International Journal of Sociology and Political Science
www.sociologyjournal.in
Online ISSN: 2664-7745, Print ISSN: 2664-7737
Received: 01-06-2025, Accepted: 01-07-2025, Published: 16-07-2025
Volume 7, Issue 3, 2025, Page No. 5-7

भारतीय संदर्भ एवं परिप्रेक्ष्य में समाजवाद का वैचारिक आरोहण की मौलिकता

डा. अखिलेश त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, ईश्वर शरण डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
ऋग्वेद संहिता में दान की व्यवस्था का यशोगान तथा कृपण की निन्दा की गयी है तथा साथ ही धन के समान वितरण का अनुसमर्थन किया गया है। ऋग्वेद संहिता के अनुसार, ''इन्द्र देवता कृपणधनी से मित्राता नहीं करता प्रत्युत् उसके धन को नष्ट कर देता है तथा उसे नग्न करके मार डालता है।''[1] एक अन्य स्थल पर पूषा देवता से प्रार्थना की गयी है, ''हे पूषा देव जो दान नहीं करना चाहता, उसे आप देने के लिए उत्प्रेरित कीजिए, कृपण के मन को मृदुल कीजिए।''[2] ऋग्वेद के दसवें मण्डल (सूक्त 11मंत्रा 5) में इस बात का पक्षपोषण किया गया है कि आर्थिक रूप से सम्पन्न मनुष्यों का यह कर्त्तव्य है कि वह मांगने वाले को धन प्रदत्त करे, ऐसा दान दाता दूरदर्शी बने, उसकी दृष्टि दूर संवेदी बने, सम्पत्ति किसी एक के पास स्थिर न रह कर रथ के पहियों की भाँति घूमती रहे। एक दूसरे में अन्तर्निहित होती रहे।''

मूलशब्दः ऋग्वेद संहिता, इन्द्र देवता कृपणधनी, मौलिकता, समाजवाद

ऋग्वेद संहिता, श्री मद्भगवतद्गीता तथा मनुस्मृति में उस व्यक्ति की घोर निन्दा की गयी जो अपनी सम्पत्ति मात्रा को अपने उपभोग में लाता है तथा दूसरे व्यक्ति को परिदत्त नहीं करता है। ऐसे व्यक्ति को पापी की संज्ञा से अभिहित किया गया है।

वैश्विक क्षितिज पर समाजवाद अथवा समाजवादी आन्दोलन का समारम्भ वैज्ञानिक वैश्विक क्षितिज पर समाजवाद एवं समाजवादी आन्दोलन का समारम्भ वैज्ञानिक समाजवाद के प्रणेता कार्लमार्क्स से होता है। प्रत्युत् भारत में सुदूर अतीत में समाजवादी भावबोध के दर्शन होते हैं। यदि भारतीय राजनीतिक साहित्य का सूक्ष्म निरीक्षण करें तो परिज्ञात होता है कि लोकमंगल की पवित्रा भावना हमारी संहिताओं में सभ्यता के समारम्भ से ही विद्यमान थी। ऋग्वेद संहिता में दान की व्यवस्था का यशोगान तथा कृपण की निन्दा की गयी है तथा साथ ही धन के समान वितरण का अनुसमर्थन किया गया है। ऋग्वेद संहिता के अनुसार, ''इन्द्र देवता कृपणधनी से मित्राता नहीं करता प्रत्युत् उसके धन को नष्ट कर देता है तथा उसे नग्न करके मार डालता है।''1एक अन्य स्थल पर पूषा देवता से प्रार्थना की गयी है, ''हे पूषा देव जो दान नहीं करना चाहता, उसे आप देने के लिए उत्प्रेरित कीजिए, कृपण के मन को मृदुल कीजिए।''[2] ऋग्वेद के दसवें मण्डल (सूक्त 11मंत्रा 5) में इस बात का पक्षपोषण किया गया है कि आर्थिक रूप से सम्पन्न मनुष्यों का यह कर्त्तव्य है कि वह मांगने वाले को धन प्रदत्त करे, ऐसा दान दाता दूरदर्शी बने, उसकी दृष्टि दूर संवेदी बने, सम्पत्ति किसी एक के पास स्थिर न रह कर रथ के पहियों की भाँति घूमती रहे। एक दूसरे में अन्तर्निहित होती रहे।''[3]

ऋग्वेद संहिता, श्री मद्भगवतद्गीता तथा मनुस्मृति में उस व्यक्ति की घोर निन्दा की गयी जो अपनी सम्पत्ति मात्रा को अपने उपभोग में लाता है तथा दूसरे व्यक्ति को परिदत्त नहीं करता है। ऐसे व्यक्ति को पापी की संज्ञा से अभिहित किया गया है। ऋग्वेद संहिता में एक स्थल पर कहा गया, ''हृदय हीन व्यक्ति से अन्न प्राप्त करना व्यर्थ है। यह सत्य है कि यह उस अन्न का वध है जो अपने अन्न से न अपना पोषण करता है न अपने मित्रा का। ऐसा व्यक्ति पाप का भागी होता है।''[4] ऋग्वेद संहिता की इसी भावना का श्रीमद्भगवद्गीता एवं मनुस्मृति में अनुसमर्थन किया गया है। श्रीमद्भगवद्गीता एवं मनुस्मृति में परोपकार के कार्यों को करने का पक्षपोषण किया गया है। यज्ञ करके उसके शेष भाग को अपने उपयोग के लिए प्रयुक्त करने वाला सज्जन समस्त पापों से मुक्त हो जाता है तथा जो यज्ञ नहीं करते हैं तथा अपने अन्न का उपयोग स्व के लिए करते हैं परमार्थ के लिए नहीं करते वे पाप कर्म से युक्त होते हैं।[5]

वैदिक साहित्य में समान वितरण का सम्भवतः सबसे स्पष्ट उल्लेख सामंजस्य सूक्त (अथर्ववेद 3/20) में है। आपका जल पीने का स्थान समान हो, सब में अन्न का वितरण एक जैसा हो (समानी प्रपा सह यो अन्न भागः) है। इसी सूक्त में वर्तमान समाजवादियों के आदर्श का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि, ''तुम सबको एक साथ मिलकर चलने वाला एक मन तथा समान रूप में बाँट कर एक साथ भोजन करने वाला बनना है।''[6]

महात्मा गांधी ने लिखा है कि समाजवाद ही नहीं साम्यवाद भी ईशोपनिषद् के पहले मंत्रा में स्पष्ट है। मंत्रा का अर्थान्वयन इस प्रकार है कि ''जगत में जो कुछ है वह सब ईश्वर द्वारा बनाया हुआ है, इसलिए उसके नाम से त्याग करके तू उपभोग करता जा, किसी के धन के प्रति लालसा न रख।''[7]

भारत के प्राचीन ग्रंथों में जो लोक कल्याणकारी राज्य की परिकल्पना मिलती है, वह उपर्युक्त मंगलमय भावना पर अवलम्बित है। आधुनिक युग में राष्ट्रपिता गांधी, सन्त विनोबा भावे ने इसी मंगलमयी भावना या सर्वोदय के प्रवर्तन का प्रयास किया। इस प्रकार भारत में वैदिक काल से आधुनिक काल के सर्वोदय तक वास्तविक समाजवाद की प्रतिस्थापना के लिए अनवरत् प्रयास होता रहा है। भारतीय समाजवाद की अवधारणा अध्यात्म एवं सत्य पर अवलम्बित है। भारत के इस मौलिक समाजवाद में वास्तविक आध्यात्मिक चेतना की सम्प्राप्ति के लिए निर्गुण और सगुण की उपासना, निष्काम कर्म, ज्ञान आदि साधन माने गये हैं जिनके अनुप्रयोग से समत्व बुद्धि की प्राप्ति होती है। इस समाजवाद का श्रेय, प्रेय तथा पाथेय था अनासक्ति और अपरिग्रह। परन्तु भारत का समाजवाद कार्ल मार्क्स से अभिप्रेरणा प्राप्त करता हुआ जनशक्ति और विधि द्वारा सम्पत्ति की संस्था का उन्मूलन करके स्वतंत्रा समाजवाद की प्रतिस्थापना को अपना सुनिश्चित ध्येय बनाया। डॉ0 राम मनोहर लोहिया के अनुसार, ''समाजवादी आन्दोलन की शुरुआत भारत और विश्व में एक अर्थ में बहुत पहले ही हो जाती है, वह अर्थ है अनासक्ति की मिल्कियत और ऐसी चीजों के प्रति लगाव समाप्त करने का, मोह के परित्याग का, किन्तु जब से समाजवाद के ऊपर मार्क्स की छाप पड़ी, तबसे एक दूसरा अर्थ सामने आ गया। यह है–

सम्पत्ति की संस्थाओं को समाप्त करने का, सम्पत्ति रहे ही नहीं, चाहे विधि से चाहे जनशक्ति से।''[8]

इस दृष्टिकोण से भारत के समाजवादी आन्दोलन को दो प्रवर्गों में विभाजित करना उपयुक्त है। प्रथमतः प्राचीन भारतीय समाजवादी विचारधारा तथा आधुनिक समाजवादी विचारधारा। आधुनिक समाजवादी विचारधारा को डॉक्टर राम मनोहर लोहिया असली समाजवादी विचारधारा की संज्ञा से अभिहित करते हैं जिसका प्रादुर्भाव सन् 1934में हुआ। आधुनिक भारतीय समाजवादी आन्दोलन को पुनः चार भागों में विभक्त करना उपयुक्त होगा–

प्रथम काल –1934ई0 से 1946ई0 तक।
द्वितीय काल –1947ई0 से 1951 ई0 तक।
तृतीय काल –1952ई0 से 1955ई0 तक।
चतुर्थ काल –1956ई0 से अद्यतन।

विश्व के इतिहास में 1947ई0 से पूर्व का समय आपसी तनाव का काल था। द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणाम स्वरूप विश्व के सभी देशों की आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था ने विश्व को दो महान शक्तियों में विभक्त कर दिया था। दोनों शक्तियाँ अपनी सम्प्रभुता एवं सर्वोच्चता को अस्तित्वमान रखने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील थीं। इसी कारण से विश्व में आपसी तनाव एवं आन्तरिक असंगतियाँ स्वाभाविक रूप से उत्पन्न हो गयी थी। ऐसी संभावना की जाने लगी थी कि विश्व में शान्ति कायम करना असंभव तो नहीं परन्तु जटिल अवश्य हो गया है। यद्यपि निष्पक्ष रूप से कहा जाय तो यह कहना उपयुक्त होगा कि देशों के मध्य आभ्यान्तरिक विरोध बढ़ता जा रहा था। सन् 1950में कोरिया का युद्ध आरम्भ हुआ। दूसरी ओर चीन में उसी समय राष्ट्रीय स्वयं सेवक वर्ग ने अपने पूर्ववर्ती गणतंत्रा के विरुद्ध क्रान्ति का आ वान किया। क्रमशः इन दोनों घटनाओं ने विश्व की शान्ति समस्या को और जटिल बना दिया। चीन ने संयुक्त राष्ट्र संघ के सुझाव को भी अस्वीकार कर दिया तथा इसे मानवता के लिए आग्रहपूर्ण आक्रमण की घोषणा की संज्ञा दी। यह संघर्ष आपसी संघर्ष न होकर दो व्यवस्थाओं क्रमशः पूंजीवादी और समाजवादी व्यवस्थाओं का संघर्ष था।9इन घटनाओं ने एशिया की राजनीतिक घटनाओं को अत्यधिक सीमा तक प्रभावित किया। इन घटनाओं ने यह सिद्ध कर दिया कि इस विश्व में दो व्यवस्थाओं के संघर्ष को समाप्त नहीं किया जा सकता है, जब तक कि एक ही विचारधारा सम्पूर्ण देशों में स्थापित न की जा सके, चीन ने पुराने बुर्जुआ आधार पर स्थापित प्राचीन गणतंत्रा को समाप्त करके उसके स्थान पर जनवादी गणतंत्रा की प्रतिस्थापना करके विश्व में शक्ति संतुलन की अभिनव स्थिति का सृजन किया। कोरिया के युद्ध में, जिसके एक पक्ष को चीन का समर्थन प्राप्त था, विश्व में एक नये प्रकार के शीत युद्ध को जन्म दिया। परिणाम स्वरूप विश्व एक नये विश्वयुद्ध के करीब पहुँच गया। वैश्विक महत्व की इन घटनाओं ने विश्व की दो महाशक्तियों को सशस्त्रीकरण की अभिप्रेरणा प्रदान की। परन्तु समय–समय पर युद्धक प्रवृत्ति को सीमित करने के लिए समझौते, सन्धियां एवं अन्यान्य प्रकार के साधनों को अपनाने का प्रयास किया गया।

विश्व की बड़ी शक्तियों ने सन् 1950ई0 में पुर्नशस्त्रीकरण के लिए अपनी–अपनी सन्धियों एवं योजनाओं का आयोजन किया फलतः इसके लिए नई अनुसूचियाँ बनायी गयी। पश्चिमी देशों एवं संयुक्त राज्य अमेरिका ने समस्या का समाधान करने के लिए सन् 1950ई0 में नये राजनय की घोषणा की। परिणामस्वरूप शनैः शनैः विश्व में युद्धक पर्यावरण का सृजन हो रहा था। दक्षिणी अटलाण्टिक संधि संगठन जैसे समरनीति पर आधारित संगठनों की नींव पड़ी। फ्रान्स, तुर्की, पश्चिमी जर्मनी, यूनान आदि देशों ने इसका अनुसमर्थन किया तथा इस सन्धि के सहभागी बनें। उसी प्रकार की सन्धि संयुक्त राज्य अमेरिका ने 8सितम्बर 1950ई0 को जापान के साथ किया। संयुक्त राज्य अमेरिका ने अपनी नीति निर्माण को ठोस आधार, साम्यवादी नीतियों को दृष्टि पथ में रखकर उसके विरुद्ध प्रस्तुत की, यह अमेरिका के घोषित राजनय की प्रमुख विशेषता थी।

यूरोप के देशों की अपेक्षा एशिया में इस प्रवृत्ति का तीव्र गति के साथ विकास हुआ। चीन ने अब दूसरे प्रकार की नीति को ग्रहण किया जिसे उसने शान्ति की नीति की संज्ञा दी तथा यही उचित समझा। चीन की इस नई नीति का उसके पड़ोसी देशों पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। भारत ने इस नई नीति को स्वीकार नहीं किया। संयुक्त राष्ट्र संघ ने चीन की राष्ट्रीयकरण सम्बन्धी नई नीति के सम्बन्ध में सदस्य देशों ने समझौता करने से इन्कार कर दिया।

इस पुनर्शस्त्रीकरण कार्यक्रम को संयुक्त राज्य अमरीका ने प्रारम्भ किया था, इससे विश्व के नागरिकों को कोई लाभ नहीं हुआ और न होने की सम्भावना थी क्योंकि यह नीति एक प्रकार से पूंजीवादी व्यवस्था को अस्तित्वमान रखने तथा दूसरी ओर साम्यवाद के प्रसार के विरुद्ध थी। उस समय के अर्थशास्त्रियों ने इस काल को 'मुद्रा प्रसार' के युग की संज्ञा दी थी। इस कार्यक्रम में पूंजी की अत्यधिक आवश्यकता थी। सामरिक सामग्री की कीमतों में बराबर वृद्धि हो रही थी। परिणाम स्वरूप सामान्य जनता के उपभोग की वस्तुओं पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। फलतः सामान्य जन की उपभोग की वस्तुओं में कमी आने लगी। इसका प्रभाव वृहद् स्तर पर पड़ना स्वाभाविक था। सन् 1950ई0 में ब्रिटिश लेबर सरकार के समक्ष एक प्रकार का आर्थिक संकट पैदा हो गया था, इस आर्थिक संकट का सामान्य जीवन स्तर पर गहरा प्रभाव पड़ा, फलतः ट्रेड यूनियनों में वृद्धि हुई। इन समस्त कारणों ने ब्रिटेन की लेबर सरकार को पुनर्शस्त्रीकरण के कार्यक्रम को क्रियान्वित करने में असमर्थ कर दिया। इस प्रकार के कार्यक्रमों का प्रभाव मध्यवर्ग के जीवन स्तर पर बराबर बढ़ता जा रहा था तथा विशेष रूप से श्रमिक वर्ग को अधिकाधिक प्रभावित कर रहा था। यह प्रभाव इंग्लैण्ड में ही नहीं प्रत्युत विश्व के सम्पूर्ण मजदूर वर्ग को अनुप्राणित कर रहा था परन्तु विशेष रूप से यह प्रभाव उन देशों में अधिक पड़ा, जहाँ पर इस कार्यक्रम को लागू करने का प्रयास किया जा रहा था। यह वे घटनाएं थीं जिनके कारण पूंजीवादी देशों में श्रमिक वर्ग के माध्यम से समाजवादी विचारधारा को पनपने का अवसर प्राप्त हुआ।

एशिया तथा अफ्रीका के नवोदित राष्ट्रों की अर्थव्यवस्था या तो विकासशील थी या विकसित होने की प्रारंभिक अवस्था में थी। इनमें शोषण तथा गरीबी बढ़ती जा रही थी। इसका प्रमुख कारण पश्चिमी देशों द्वारा उनका आर्थिक शोषण था जिसने इन कठिनाइयों को जटिल बनाने में सहयोग प्रदान किया। पूंजीवादी देशों की सरकारों के द्वारा इस प्रवृत्ति को निरन्तरता में रखने का प्रयास किया जा रहा था। इससे पूंजीवादी वर्ग के लाभ में बराबर वृद्धि हो रही थी। विश्व की सामान्य जनता अपना जीवन–स्तर कायम रखने में कठिनाई की अनुभूति कर रही थी। इन विरोधों ने आर्थिक समस्याओं की वृद्धि में योग दिया। बुद्धिजीवी वर्ग द्वारा यह विचार व्यक्त किया जाने लगा था कि वर्तमान समस्याओं का समाधान मात्रा आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन के बाद ही सम्भव हो सकता है।

इस समय यह कहना कठिन था कि इनके सम्बन्ध में रूस की क्या प्रतिक्रिया थी। लेकिन रूस के समक्ष यह विचार प्रकट हो चुका था कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद सभी देशों की आर्थिक और सामाजिक दशाएँ अच्छी नही थीं। सभी देश आर्थिक कठिनाइयों की दशा से गुजर रहे थे। प्रत्येक देश के बजट में आर्थिक विकास को नवीन स्तर पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया जा रहा था। सभी देशों में विस्तृत पैमाने पर विकास की योजनाएँ तैयार की जा रही थी। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जो

नये साम्यवादी देश उभर कर सामने आये थे, उनके सम्बन्ध में यह सत्य था कि उनकी आर्थिक व्यवस्था पूंजीवादी देशों की आर्थिक व्यवस्था की अपेक्षा काफी सुदृढ़ थी। चीन द्वारा नया एटमी परीक्षण जो कि पूर्वी राष्ट्रों के लिए सबसे बड़ा प्रमाण था विशेष रूप से भारत के लिए था, जहाँ कि आर्थिक व्यवस्था अविकसित तथा पिछड़ी हुई थी, प्रभावित कर सकती थी। वर्तमान समय में जो विरोध का मूल कारण है वह भूतकाल से चली आ रही शासन व्यवस्था जो परम्परागत शोषण के सिद्धान्त पर व्यवस्थित है, उसमें सुधार की आवश्यकता महसूस की जा रही है जिसके सम्बन्ध में चीन तथा अन्य समाजवादी एवं साम्यवादी देशों को प्रमाण स्वरूप पैदा किया जाता है।

सन् 1947ई0 में भारत ब्रिटेन की दासता से अवमुक्त हुआ। तत्कालीन परिस्थितियों में भारत की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अधिरचना अस्त–व्यस्त थी। भारत में राजनीति कांग्रेस के आस–पास संकेन्द्रित थी यह कहना असंगत न होगा कि 1947ई0 में भारतीय राजनीति को कांग्रेस ने ही गति प्रदान की। भारत की राजनीतिक संचालक शक्ति कांग्रेस के हाथ में थी। परन्तु कांग्रेस पूर्व की औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के स्थान पर नवीन अर्थव्यवस्था की प्रतिस्थापना में अपने को असमर्थ पा रही थी। तत्कालीन समय में एक आर्थिक सर्वेक्षण के उपरान्त पाया गया कि अभी भी भारत की अर्थव्यवस्था औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के समरूप है।

15अगस्त 1947ई0 को भारत दो भागों में विभक्त हो गया था अन्तिम रूप से सत्ता दोनों राष्ट्रों को प्रदान कर दी गयी। लेकिन यह प्रक्रिया बहुत पहले आरम्भ हो चुकी थी।[10] इससे पूर्व लार्ड वेवल ने नेहरू जी की अध्यक्षता में अन्तरिम सरकार का गठन किया था। यद्यपि भारत पूर्ण रूप से स्वतंत्रा हो चुका था परन्तु भारतीय जनमानस में जो स्वतंत्राता के प्रति पूर्ण उत्कण्ठा थी, उसका अंकुरण भय के परिवेश में हुआ था। उसमें सामाजिक संघर्षों के कारण शंका पैदा होने लगी थी। साम्प्रदायिक विरोध तीव्र गति से बढ़ रहे थे। भारतीय नेताओं के समक्ष इस समस्या के समाधान का एक ही समाधान था भारत का विभाजन, जिससे भारत में विधि व्यवस्था की प्रतिस्थापना हो सके। इस विचार से पृथक कुछ भारतीय नेता इससे पृथक विचार रखते थे। इन नेताओं में आचार्य नरेन्द्र देव का स्थान प्रमुख था जिन्होंने समाजवादी व्यवस्था की अधिस्थापना के माध्यम से साम्प्रदायिकता के विषधर से राष्ट्र को अवमुक्त करना चाहते थे। आचार्य नरेन्द्र देव साम्प्रदायिकता की समस्या का समाधान समाजवादी व्यवस्था की स्थापना में देखते हैं। [11] देश के विभाजन का विचार मुस्लिम नेताओं द्वारा स्वतंत्राता संघर्ष के दौरान ही व्यक्त किये जा चुके थे, परिणामस्वरूप दोनों सम्प्रदायों के मध्य आन्तरिक एवं वाह्य क्रमशः दोनों स्तरों पर दूरियाँ लगातार बढ़ती जा रही थीं फलतः देश के सामाजिक और राजनीतिक वातावरण में बिखराव प्रारम्भ हो गया था। इस समस्या के समाधान के लिए देश का विभाजन आवश्यक हो गया था, जिसको राष्ट्रीय नेताओं ने अनिच्छा पूर्वक स्वीकार कर लिया।

इसके विपरीत राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, डॉक्टर राम मनोहर लोहिया, लोक नायक जय प्रकाश नारायण ने विभाजन को रोकने के लिए नयी–नयी योजनाएँ रखीं लेकिन दुर्भाग्यवश अस्वीकृत कर दी गयी।1230जनवरी 1948ई0 को महात्मा गांधी की हत्या कर दी गयी जो साम्प्रदायिक विरोधों की तार्किक परिणति थी। साम्प्रदायिक संगठनों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। जन–मानस में इनके प्रति अविश्वास की भावना पैदा होने लगी थी।

15अगस्त 1947ई0 को भारत में जन सम्प्रभुता का सूर्योदय हुआ। भारतवर्ष के मुक्तांगन में लोकतंत्रा का शिशु घुटने के बल चलना आरम्भ किया, परिणाम स्वरूप भारतीय राजनीतिक अधिरचना में दल अस्तित्ववान हुए। 15अगस्त 1947के पूर्व सभी दलों का परम श्रेय–प्रेय–पाथेय था भारत की औपनिवेशिक दासता से विमुक्ति, अतएव सभी दल कांग्रेस से सम्बद्ध थे। ट्राटस्की के विचारानुसार किसी भी विचारधारा को अंगीकार करने से पूर्व राष्ट्र की स्वतंत्राता आवश्यक होती है। इसीलिए इसे प्राप्त करने का प्रयास मतैक्य के साथ करना चाहिए। एकता के आधार पर संगठित होकर ही मुख्य ध्येय की प्राप्ति की जा सकती है। स्वतंत्राता के पश्चात् सभी दलों एवं गुटों ने अपना पृथक अस्तित्व कायम किया एवं अपने दल के सिद्धान्तों के आधार पर कार्यक्रम की घोषणा की। यह सभी दल विभिन्न विचारधाराओं के आधार पर संगठित किये गये थे, अतएव यह स्वाभाविक था कि इनकी कार्य प्रणाली भी भिन्न–भिन्न होती।

सत्ता के हस्तानान्तरण के पश्चात् जनमानस दो भागों में विभक्त हो गया था। प्रथमतः इसके पक्षपोषक धर्म निरपेक्षता में आस्था रखते थे तथा पार्टी संरचना के संदर्भ में धर्मनिरपेक्षता उसकी आधारिक संरचना में समाहित थी। इसके विपरीत साम्प्रदायिकता को पार्टी संरचना में समाहित करते ही यह सभी पक्षों को प्रभावित कर सकती थी तथा राष्ट्र पर इसका विपरीत प्रभाव ही पड़ सकता था, उसे दबाना ही उचित था। [13]

संदर्भ

1. ऋग्वेद संहिता, अनुवाद : राधेश्याम खेमका, गीता प्रेस, गोरखपुर संवत 2045 3/25/7।
2. ऋग्वेद संहिता, 6/53/3।
3. ऋग्वेद संहिता, 1/117/5।
4. ऋग्वेद संहिता, 10/117/6।
5. ऋग्वेद संहिता, 10/117/6।
6. श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर, एक सौ सत्तावनवां संस्करण, सं0 2051 3/13।
7. हरिजन, 20जनवरी सन् 1973के अंक से।
8. समाजवादी आन्दोलन का इतिहास : डॉ0 राम मनोहर लोहिया, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद 1969 पृष्ठ संख्या 1।
9. ग्रोथ आफ सोशलिज्म इन इण्डिया : कु0 लक्ष्मी गुहा, ज्ञानदा प्रकाशन नई दिल्ली, 1956 पृष्ठ संख्या 265।
10. कान्स्टीट्यूशनल सिस्टम आफ द इण्डियन रिपब्लिक : के0 आर0 वाम्बवाल माडर्न पब्लिकेशन, अम्बाला कैण्ट 1971।
11. समाजवाद की रूप रेखा : अमर नाथ अग्रवाल, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, तृतीय संस्करण 1974 पृष्ठ संख्या 32।
12. डॉ0 लोहिया : ओंकार शरद, रंजना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1967 पृष्ठ संख्या180।
13. यूनिटी आफ इण्डिया : पण्डित जवाहर लाल नेहरू, सम्पादक : वी0 के0 कृष्णन, लिन्डीसी, ड्रीमनान्ड कं0 लन्दन, प्रथम संस्करण, 1948 पृष्ठ संख्या 139।